

८७ गाथा का कलश । कलश है न ? ११६वाँ कलश ।

शल्यत्रयं परित्यज्य निःशल्ये परमात्मनि ।

स्थित्वा विद्वान्सदा शुद्धमात्मानं भावयेत्स्फुटम् ॥११६॥

[ श्लोकार्थ : ] तीन शल्यों का परित्याग करके... यह तो मूल बात है न ! मिथ्या शल्य, निदान शल्य और माया शल्य । तीन शल्यों का परित्याग करके,... परि अर्थात् समस्त प्रकार से त्याग करके । फिर से उत्पन्न न हो, इस प्रकार से ( त्याग करके ) । यह शब्द प्रयोग किया है—परित्याग करके । तीन प्रकार के शल्य छोड़कर, सर्वथा छोड़कर निःशल्य परमात्मा में... क्योंकि परमात्मस्वरूप जो है, वह तो निःशल्य है । अपना परमात्मस्वरूप, भगवत्स्वरूप, शुद्ध परमेश्वरस्वरूप, वह तो निःशल्य है । वस्तु है, वह तो निःशल्य है । वस्तु में शल्य नहीं, आवरण नहीं, वस्तु में कोई अल्पज्ञता भी नहीं, ऐसा

निःशल्य परमात्मा (स्वयं है)। आहाहा! यह बात जँचना कठिन (पड़ती है)। प्रथम सम्यग्दर्शन में, यह निःशल्य परमात्मा है, ऐसा इसे दृष्टि में—अनुभव में आना चाहिए। परमात्मा परमस्वरूप जो भगवान, उसमें कोई राग-द्वेष तो नहीं, शल्य नहीं। निःशल्य परमात्मा। पहले आ गया है। पहले आया था न?

**निश्चय से निःशल्यस्वरूप परमात्मा...** कल पहली लाईन आयी थी। ८७ गाथा की पहली लाईन। आहाहा! चैतन्यस्वरूप वीतरागमूर्ति आत्मा, परमस्वरूप परमात्मा, वह निःशल्य है। वस्तु में शल्य है नहीं परन्तु पर्याय में जो शल्य है, इसलिए कहते हैं **निःशल्य परमात्मा में स्थित रहकर,...** वस्तु है तो शल्यरहित परन्तु पर्याय में जो शल्य था, उसे छोड़कर **निःशल्य परमात्मा में स्थित रहकर,...** परमस्वरूप परमानन्दमूर्ति प्रभु, भगवत्स्वरूप में स्थित रहकर। यह प्रतिक्रमण, यह सामायिक, यह धर्म, यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्ष का मार्ग यह है। आहाहा!

पहली बात यह की, त्रिशल्य परमात्मा परित्यागी। पर्याय में शल्य है परन्तु परमात्मस्वरूप त्रिकाली द्रव्य है, उसमें शल्य नहीं है। इसलिए परमात्मा का ध्यान करके और निःशल्य ऐसे परमात्मा में स्थित हो। **निःशल्य परमात्मा में स्थित रहकर,...** चैतन्यबिम्ब आनन्दकन्द प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का सागर-समुद्र, ऐसा जो परमात्मा स्वयं आत्मा, उसे सर्वथा शल्यरहित अर्थात् फिर से शल्य न हो, इस प्रकार। आहाहा! ऐसा काम है।

इसलिए **परमात्मा में स्थित रहकर, विद्वान को...** विद्वान उसे कहते हैं। आहाहा! बहुत शास्त्र को जाना हो, पढ़ा हो, दुनिया को समझाना-कहना आया हो, उसकी यहाँ बात नहीं है। यह विद्वान। निःशल्य परमात्मा में स्थिर रहे, वह विद्वान। आहाहा! वह पण्डित, विद्वान। भले जानपना थोड़ा हो, दूसरे को समझाना भी न आता हो... आहाहा! परन्तु निःशल्य परमात्मा में स्थिर रहे, वह विद्वान है। जो काम मोक्ष के लिए करना है, वह किया। आहाहा! मोक्ष के मार्ग का सेवन किया, वह विद्वान है। आहाहा!

**विद्वान को सदा शुद्ध आत्मा को...** आहाहा! पण्डित उसे कहते हैं कि **निःशल्य परमात्मा में स्थित रहकर, विद्वान को सदा...** कोई क्षण ऐसा करके नहीं; सदा। आहाहा! **शुद्ध आत्मा को स्फुटरूप से...** वस्तु जैसी शुद्ध है, परमात्मस्वरूप ही है, उसे प्रगट स्फुटरूप से। पर्याय में प्रगट स्फुटरूप से... आहाहा! सदा आत्मा को स्फुटरूप से-

प्रगटरूप से ( भाना चाहिए ) । शक्ति और द्रव्यस्वभाव तो है, परमात्मा ही है परन्तु विद्वानों को पर्याय में प्रगट करके... शक्ति स्वभाव की व्यक्ति पर्याय में प्रगट करके भाना चाहिए । बहुत थोड़े शब्द हैं ।

सदा शुद्ध आत्मा को स्फुटरूप से... प्रगटरूप से, व्यक्तरूप से भाना चाहिए । इसका नाम धर्म और मोक्ष का मार्ग, इसका नाम भावप्रतिक्रमण है । यह तो ऐसे बहुत प्रतिक्रमण किये । वह प्रतिक्रमण नहीं । जिससे हटा और जिसमें बसा, उसमें से हटे नहीं, उसका नाम यहाँ प्रतिक्रमण कहने में आता है । आहाहा ! यह क्या कहा ? प्रतिक्रमण शब्द है न ? वह शल्य और विकार से हटा और त्रिकाली परमात्मा निःशल्य में बसा, उसमें स्थिर हुआ, उसने सदा आत्मा को स्फुटरूप से भाना चाहिए । पर्याय में वह परमात्मा है, ऐसी भावना करनी चाहिए । आहाहा ! ऐसा कठिन पड़े । परन्तु इसका कोई व्यवहार साधन नहीं होगा ? ऐसा साधन ! साधन यही है ; दूसरा साधन नहीं है । दूसरा कहने में आया हो, व्यवहार उपचार से कथन ( आये हों ), वह वास्तविक वस्तु नहीं है ।

जैसा यह प्रभु पूर्णानन्द का नाथ परमात्मा अन्दर है, उसे स्वभाव है और परमात्मा की शक्ति है, उसे पर्याय में प्रगटरूप से परमात्मा की भावना करके प्रगट करना । आहाहा ! इसका नाम प्रतिक्रमण, इसका नाम प्रत्याख्यान, इसका नाम आत्मा की भक्ति, इसका नाम आत्मा की समाधि, इसका नाम आत्मा का ध्यान, इसका नाम आत्मा की भावना, आहाहा !

शुद्ध आत्मा को... जो त्रिकाल शल्यरहित प्रभु आत्मा को भाना अर्थात् त्रिकाली शुद्ध परमात्मा निःशल्यस्वरूप है, उसमें एकाग्र होना, यह परमात्मा की भावना है । भावना शब्द से विकल्प, ऐसा नहीं । भाना अर्थात् कल्पना से भाना, ऐसा नहीं । यह वस्तु भावस्वरूप, शुद्ध पूर्ण आनन्द का धाम 'स्वयं ज्योति सुखधाम' स्वयं चैतन्य प्रकाश और आनन्द का धाम है, उसे पर्याय में भाना । आहाहा ! उसे ध्येय बनाकर पर्याय में उसकी भावना करनी । निर्विकल्प समाधि, निर्विकल्प भाव करना, इसका नाम भावना, इसका नाम सच्चा प्रतिक्रमण है । झूठा प्रतिक्रमण तो अनन्त बार किया, उसमें कुछ हुआ नहीं । आहाहा ! भव का अभाव हुआ नहीं । लन्दन का पत्र आया है, वीरचन्दभाई ! प्रेमचन्द लन्दन का पत्र आया है । बहुत प्रसन्नता बतायी है । भगवानजीभाई अभी वहाँ गये होंगे । मुम्बासा, लन्दन, वाँचन किया होगा लन्दन, पचास एक व्यक्ति इकट्ठे होने पर । आमन्त्रण थोड़ों को दिया था, जगह थोड़ी

थी। नहीं तो कहते हैं बहुत लोग (आते)। यह बात लन्दन में चली है। आहाहा!

घर में पुस्तकें बसायी हैं। टेपरिकार्डिंग कितनी ही बसायी हैं। टेपरिकार्डिंग कितनों को दिये। लन्दन में प्रचार करते हैं। बापू! यह मार्ग है। दूसरे मार्ग में जाएगा तो यह भव तो यह के यह रहेंगे - चौरासी के अवतार भवाटवी का तुझे भाव, यह भवाटवी का भाव भी अनादि का है, प्रभु! आहाहा! इससे रहित भाव हुए बिना भवाटवी टले, ऐसा नहीं है। आहाहा! बहुत प्रसन्नता बतायी है। तीन-चार पन्ने आये हैं।

यह ११६वाँ कलश हुआ।

### श्लोक-११७

( पृथ्वी )

कषायकलिरञ्जितं त्यजतु चित्तमुच्चैर्भवान्,  
भवभ्रमणकारणं स्मरशराग्निदग्धं मुहुः।  
स्वभावनियतं सुखं विधिवशा-दनासादितं,  
भजत्वमलिनं यते प्रबलसन्सृतेर्भीतितः ॥११७॥

( हरिगीतिका )

भवभ्रमण का कारण तथा कामाग्नि से जो दग्ध है।  
कषाय दुःख से जो रंगा उस चित्त को तू छोड़ दे ॥  
जो कर्मवशात् से अप्राप्त, स्वभाव में निश्चित सदा।  
हे यती! तू प्रबल भव-भय से विमल आनन्द भज ॥११७॥

[ श्लोकार्थ : ] हे यति! जो ( चित्त ) भवभ्रमण का कारण है और बारम्बार कामबाण की अग्नि से दग्ध है—ऐसे कषायक्लेश से रंगे हुए चित्त को तू अत्यन्त छोड़; जो विधिवशात् ( -कर्मवशात् के कारण ) अप्राप्त है, ऐसे निर्मल \*स्वभावनियत सुख को तू प्रबल संसार की भीति से डरकर भज ॥११७॥

\* स्वभावनियत=स्वभाव में निश्चित रहा हुआ; स्वभाव में नियम से रहा हुआ।

## श्लोक-११७ पर प्रवचन

११७ (कलश)

कषायकलिरञ्जितं त्यजतु चित्तमुच्चैर्भवान्,  
 भवभ्रमणकारणं स्मरशराग्निदग्धं मुहुः।  
 स्वभावनियतं सुखं विधिवशा-दनासादितं,  
 भजत्वमलिनं यते प्रबलसन्सृतेर्भीतितः ॥११७॥

[ श्लोकार्थः ] हे यति!... मुनि की मुख्यता से बात की है न? हे यति!... हे मुनि! हे स्वरूप का यत्न करनेवाले, जतन करनेवाले यति! स्वरूप परमात्मा जो निःशल्य है, उसकी जतना, यतना, रक्षा करनेवाले यति! जो ( चित्त ) भवभ्रमण का कारण है... आहाहा! जो चित्त शल्यसहित है, वह भवभ्रमण का कारण है। आहाहा! मिथ्यात्व शल्य, निदान शल्य, माया शल्य। जो ( चित्त )... अर्थात् भाव। भवभ्रमण का कारण है... बाहर में संयोग को भवभ्रमण का कारण नहीं कहा। भवभ्रमण का कारण अन्दर की चित्त मलिनता है। पर्याय में मिथ्यात्व, रागादि की मलिनता, वह भवभ्रमण का कारण है। संयोगी चीज अनन्त हो, वह भिन्न है। वह कहीं भवभ्रमण का कारण नहीं है। आहाहा! तेरी पर्याय में द्रव्यस्वभाव का अनादर करके, रागादि शल्य को अपना मानकर आदर करे, वह भवभ्रमण का कारण है। आहाहा! प्रवृत्ति के कारण इसे ऐसी निवृत्ति लेना... आहाहा!

यह भवभ्रमण का कारण है... कौन? मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान, मिथ्यानिदान और माया (शल्य), वह भवभ्रमण का कारण है। भगवान् द्रव्यस्वभाव त्रिकाल निरावरण और भव के स्वभाव के भाव से अभावरूप है। उसे पर्याय में भवभ्रमण के कारणवाले भाव से... आहाहा! और बारम्बार कामबाण की अग्नि से दग्ध है... आहाहा! भगवान् आनन्दस्वरूप, शान्तस्वरूप है। उसे बारम्बार विकल्प उत्पन्न करके... आहाहा! पुण्य और पाप के विकल्पों को उत्पन्न करके कामबाण की अग्नि से दग्ध है... ये विकल्प के भाव हैं, वह कामबाण है, उनसे आत्मा अशान्ति में जल रहा है। आहाहा! सूक्ष्म पड़ता है। कामबाण अर्थात् इच्छा। आत्मा में इच्छा नहीं है। आत्मा तो इच्छारहित शुद्ध है। उसे इच्छा के कामबाण। एक के बाद एक इच्छा के कामबाण से... आहाहा! अग्नि से दग्ध है... इच्छा के बाण से, अग्नि से दग्ध है।

भगवान् निर्मलानन्द शान्त, वह इन इच्छाओं के बाण से दग्ध है। आहाहा! चाहे तो यह शुभ-अशुभ की कल्पना हो, परन्तु उस इच्छा के बाण से शान्तमूर्ति भगवान् पर्याय में दग्ध अर्थात् जल गया है। आहाहा! इच्छारहित आत्मा है, उसे इच्छा के बाण से उत्पन्न करके और वर्तमान पर्याय में शान्ति से जल रहा है। द्रव्य तो द्रव्य है। आहाहा! परन्तु पर्याय में इच्छा का जाल खड़ा करके आत्मा की शान्ति जल रही है। आहाहा! इच्छारूपी अग्नि से 'क्या इच्छत खोवत अबे, है इच्छा दुखमूल।' 'क्या इच्छत खोवत अबे, है इच्छा दुखमूल।' आहाहा! यह इच्छा-वृत्ति का उत्पन्न होना, स्वभाव-स्वभाव की भावना के अतिरिक्त... आहाहा! अपने द्रव्य के अतिरिक्त अनन्त-अनन्त द्रव्य पर हैं, उनकी ओर के इच्छारूपी बाण से स्वरूप की पर्याय जल गयी है, जल रही है। शान्ति सुलगती है। पर्याय से, हों! वस्तु का शान्तिस्वरूप तो त्रिकाल ध्रुव नित्य है। समझ में आया ?

यह इच्छारूपी... आहाहा! बारम्बार कामबाण... बारम्बार अर्थात्? एक के बाद एक इच्छाएँ किया ही करता है। कहीं न कहीं, कहीं न कहीं। जैसे क्या कहलाता है वह? रहट में सांधे (जोड़े) न एक के बाद एक पुणी वापस एक। इसी प्रकार इसमें एक के बाद एक इच्छा की पुणी सांधा ही करता है। आहाहा! उससे आत्मा की शान्ति दग्ध है। चाहे तो शुभ हो या चाहे तो अशुभ हो। आत्मा निर्विकार शान्तस्वरूप का सागर, उसकी पर्याय में शुभाशुभभाव की इच्छा से वह जलता है, दाह है। आहाहा!

ऐसे कषायक्लेश से रंगे हुए चित्त को... रंजित है न? रंजित? इच्छारूपी कषाय, ऐसे कषायरूपी क्लेश, उनसे रंगा हुआ चित्त। रंजित है न? आहाहा! स्वभाव भगवान् वीतरागस्वरूप, वीतरागस्वभाव से रंगना चाहिए। वीतरागस्वभाव का रंग लगना चाहिए। वीतरागस्वभाव की मस्ती प्रगट होना चाहिए। उसके बदले राग के रंग से रंगा हुआ चित्त है। आहाहा! उसे तू अत्यन्त छोड़;... ऐसे राग से रंगा हुआ चित्त, चाहे तो शुभ हो, या अशुभ हो, ऐसे रंगे हुए राग से रंजित हुए चित्त को छोड़। आहाहा! परवस्तु छोड़, ऐसा नहीं कहा। परवस्तु तो छूटी हुई पड़ी ही है। शरीर, लक्ष्मी, इज्जत, कीर्ति, कर्म, यह कहीं आत्मा में चिपटे हुए नहीं हैं। आहाहा!

यह चित्त, पर्याय में रंगा हुआ चित्त है, उसे छोड़। कि क्यों? अत्यन्त छोड़। आहाहा! ऐसे राग को अत्यन्त छोड़ कि फिर से राग का अंकुर न हो। आहा! सन्तों की

वाणी अप्रतिहत है। राग का रँगा हुआ छूटने पर, फिर से राग का रंग लगे, ऐसा है नहीं, प्रभु! राग के रंग को अत्यन्त छोड़। स्वरूप में राग का रंग है ही नहीं, ऐसे स्वरूप की तुझे प्राप्ति होगी। आहाहा! ऐसा स्वरूप है। यह स्त्री छोड़, पुत्र छोड़, परिवार छोड़, धन्धा छोड़ – ऐसा नहीं कहा। वह तो छूटा हुआ ही है। ग्रहण कब किया है कि छोड़े? यह तो ग्रहण किया है। चित्त में कषाय का, इच्छा का भाव पकड़ा है। राग से रँग गया है। पर से रँगा हुआ नहीं है। परवस्तु तेरी पर्याय में स्पर्श भी नहीं करती। आहाहा! तेरी पर्याय में, हालत में परवस्तु स्पर्श ही नहीं हुई है, इसलिए उसे त्यागना, वह शब्द यहाँ है नहीं। मात्र तेरी पर्याय में, चित्त में राग का रंग रँग गया है। जो स्वरूप में नहीं है, ऐसा जो चित्त राग से रँगा हुआ, उसे अत्यन्त छोड़। **अत्यन्त छोड़;**... ऐसा कहा है। पहले में आया था न? परित्याग। पूर्ण रीति से त्याग कर। यह अत्यन्त छोड़। दूसरी भाषा कही। उसका ही कलश है न? उस गाथा का कलश है न? आहाहा!

यह तो भवभ्रमण से घबराये हुए की बातें हैं, बापू! भवभ्रमण। यह देह छूटकर कहाँ जाएगा? आत्मा तो नित्य है। कायम रहेगा। यह सब छोड़कर, देह का टुकड़ा भी साथ में नहीं आएगा। लोग ऐसा कहते हैं न? वह जीव गया। जीव मर गया, ऐसा कहते हैं? यह सब पड़ा रहा। उसकी सब इकट्टी की हुई शामत। मनुष्य का जाल... आहाहा! घर प्रयोग की चीजें, स्त्री, पुत्र... आहाहा! अग्नि का घेरा डाला था, वह छूट गया। गया भटकने। आहाहा! प्रभु! तू कहाँ जाएगा? भविष्य के अनन्त काल में अनन्त काल रहना है। भविष्य में अनन्त काल में तुझे अनन्त काल रहना है। तेरा नाश हो, ऐसा कुछ नहीं है। तब अब तुझे कहाँ रहना है? प्रभु! उसमें तो रहा अब, चित्त के रंगे हुए राग में तो अनन्त काल रहा। उससे तो दुःखी है।

अब **अत्यन्त छोड़;**... उसे छोड़। आहाहा! भवभ्रमण का नाश करना हो तो राग के रंग को छोड़। राग की प्रीति को छोड़। अस्थिरता का राग हो परन्तु उसकी रुचि और प्रीति है, उसे छोड़। आहाहा! **चित्त को तू अत्यन्त छोड़; जो विधिवशात्...** आहाहा! अब जो कर्म जड़ हैं, उनके वश पड़ा हुआ प्रभु तू, उस वस्तु की प्राप्ति नहीं, अप्राप्त है। कर्म के वश में पड़ा हुआ तुझे आत्मा अप्राप्त है। आहाहा! भाषा है न! आहाहा! तेरा जो चैतन्यस्वभाव परमात्मस्वरूप, उसे वश में न करके, कर्म के वश में रहा। कर्म के कारण, ऐसा नहीं कहा। कर्म के कारण भटकता है, ऐसा नहीं कहा। क्या कहा?

विधिवशात्... तू कर्म के वश हो गया है। ऐसे (आत्मा के) वश होना चाहिए। आहाहा! अतीन्द्रिय अनाकुल आनन्द का नाथ प्रभु, अनादि-अनन्त अकषायस्वभाव की मूर्ति के वश न रहकर तू कर्म के वश पड़ा है। कर्म ने तुझे वश में किया है, ऐसा नहीं है। आहाहा! कर्म के वशात्। आहाहा! ( -कर्मवशात् के कारण ) अप्राप्त है... तू अप्राप्त है। कर्म के वश पड़ा हुआ तुझे तो विकार की, दोष की, दुःख की प्राप्ति है। भगवान की तो अप्राप्ति है। आहाहा! यह तो शान्ति की बातें हैं। यह कहीं बड़ी कथावार्ता नहीं है। कारण नहीं बड़ा। आहाहा! यह तो अन्तर अध्यात्म की बात है। प्रेमचन्दभाई ने विचारे ने बहुत (लिखा है)। भगवानजीभाई ने परसों वाँचन किया था। बहुत प्रसन्न हुए। (बड़ा पत्र था)। आहाहा!

अरे! ऐसी बात कहाँ है? लोगों का पुकार यह है, कर्म के कारण भटक रहा है। चार गति में कर्म के कारण से भटकता है। प्रभु का वचन ऐसा है कि तू कर्म के वश पड़ा है, इसलिए भटकता है। ऐसा अन्तर है। आहाहा! कहाँ अन्तर है, यह सुननेवाले को खबर नहीं पड़ती और जी हाँ किया करता है। आहाहा! समझ में आया? स्थानकवासी में पहले व्याख्यान पढ़े न? तब पाँच-दस मिनट स्तुति करते हैं। 'कर्मों राजा कर्मों रंक, कर्म ने वाल्यो आढो अंक।' यह सवरे में बोले। फिर व्याख्यान चालू करे। अब ऐसा कि... यह पहले करते न! आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहते हैं, प्रभु! तू परमात्मा है न! उस परमात्मा के आश्रय में जाना चाहिए, वश पड़ा चाहिए। उसे छोड़कर तू कहीं वश तो है। किसके वश है? कि तू कर्म के वश पड़ा है। कर्म ने तुझे वश किया नहीं है। कर्म ने तुझे दबाया नहीं है। तू कर्म के वश में दब गया है। आहाहा! वे कहें कि निमित्त से नैमित्तिक होता है। निमित्त से नैमित्तिक न माने, वह मिथ्यात्व है। प्रभु! प्रभु! अभी समाज साधारण है, उसमें यह बात चलेगी। भाई! प्रभु का विरह है, इसलिए चाहे जिस तरह बात को चलावे, बापू! ऐसा नहीं चलता, भाई! निमित्त आवे, तदनुसार नैमित्तिक होता है—ऐसा न माने, वह मिथ्यात्वी है—ऐसा (वे) कहते हैं।

वीतराग की वाणी दिव्यध्वनि है, उससे नैमित्तिक ज्ञान होता है। अरे! भगवान! तू कर्म के वश पड़ा है, तुझे समझ में नहीं आता। कर्म का वश छोड़ तो यह वाणी कान में पड़े



परन्तु ज्ञान तो तुझसे होता है। वह भी ज्ञान परलक्षी, वह कहीं सम्यग्ज्ञान नहीं है। आहाहा! दिव्यध्वनि कान में पड़े, वह तो परमाणु है। इससे यहाँ ज्ञान की पर्याय होती है, ऐसा तो नहीं। यहाँ उस काल में उसे ज्ञानपर्याय क्रम से क्रम काल में आनेवाली है, वह हो, तब वाणी निमित्त कही जाती है। वह ज्ञान की पर्याय हुई, वह कहीं सम्यग्ज्ञान नहीं है, क्योंकि वह अभी परवश का ज्ञान, परसत्तावलम्बी ज्ञान है। आहाहा!

परमार्थवचनिका में आया है न ? भाई ! परसत्तावलम्बी ज्ञान को धर्मी मोक्षमार्ग नहीं कहते। स्वसत्तावलम्बी को मोक्षमार्ग कहते हैं। है न ? बनारसीदास। और यह केवली वचन अनुसार कहता हूँ, ऐसा लिखा है। अन्तिम बोल ऐसा लिखा है - केवली वचन अनुसार हैं ये वचन। आहाहा ! बनारसीदास। समकित तो तिर्यच और सिद्ध का समकित तो समान है। समकित में क्या अन्तर है ? आहाहा ! चारित्र में-स्थिरता में अन्तर है।

यहाँ ऐसा कहते हैं... आहाहा ! विधि अर्थात् कर्म। विधि अर्थात् कर्म के वशात्। उसके वशपने के कारण, प्रभु अप्राप्त है। ऐसे निर्मल स्वभावनियत... आहाहा ! कर्म के वश पड़ा हुआ। अप्राप्त है, ऐसे निर्मल स्वभावनियत... स्वभाव में निश्चित रहा हुआ; स्वभाव में नियम से रहा हुआ। प्रभु ! आहाहा ! स्वभाव में रहा हुआ भगवान। उस स्वभावनियत सुख को तू प्रबल संसार की भीति से डरकर भज। आहाहा ! क्या कहते हैं ? प्रभु ! तू स्ववश हो। परवश को छोड़कर, कर्म की अधीनता को, वशपने को छोड़कर ऐसी जो निर्मल स्वभावनियत... स्वरूप स्वभाव में निश्चित रहा हुआ स्वरूप। स्वभाव में नित्य रहा हुआ ऐसा सुख। आत्मा के स्वभाव में नियत अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है। कर्म के वश पड़कर, वश रहकर प्रभु ! तुझे दुःख होता है। उसे छोड़कर स्वभाव के वश में जा। वह स्वभाव कैसा है ? कि निर्मल स्वभावनियत सुख... निर्मल स्वभाव में रहा हुआ सुख, निर्मल स्वभाव में नियत-निश्चय से रहा हुआ आनन्द। आहाहा !

जो विधिवशात् ( -कर्मवशात् के कारण ) अप्राप्त है ऐसे निर्मल स्वभावनियत सुख को तू प्रबल संसार की भीति से डरकर भज। इस ओर मुड़ जा। आहाहा ! कर्म-जड़ के वश में... अब जो न दिखायी दे, उसकी बातें। कर्म इन्द्रियों से दिखायी नहीं देते। आत्मा का दुःख है, वह इन्द्रियों से दिखायी नहीं देता। आत्मा का सुख है, वह इन्द्रियों से दिखायी नहीं देता। आहाहा ! भगवान ! परन्तु है न ? इन्द्रियों से दिखायी दे या न दिखायी

दे परन्तु वस्तु है या नहीं ? उस कर्म के आधीन हुआ है या नहीं ? क्योंकि तुझे आत्मा जो स्वभाव में रहा हुआ सुख, स्वभाव में नियत आनन्द रहा हुआ सुख, उसकी अप्राप्ति है, इसलिए तू पर के वश में पड़ा है, ऐसा है और परवश को छोड़ तो स्वभाव में रहा हुआ सुख प्रबल संसार की भीति से डरकर... आहाहा! ये चार गति के भव... ओहो! यहाँ से निकलकर कहाँ जाएगा ? प्रभु! एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, तिर्यच... आहाहा!

इस प्रबल संसार की भीति से डरकर... कर्म के वश पड़ा हुआ है, ऐसा जो आत्मा वह निर्मल स्वभाव नियत सुख है, उसे भज। उस आत्मा में आनन्द है, उसे भज। आहाहा! भाषा थोड़ी और भाव बहुत। ऐसे वश पड़ा है, उसकी अपेक्षा स्वभाव में नियत सुख है, वहाँ आ जा न! ऐसा कहते हैं। कर्म के वश पड़कर संसार में भटक रहा है, तो उस संसार के भय से डरकर... आहाहा! कहाँ उत्पन्न होऊँगा ? कहाँ जाऊँगा ? वहाँ से फिर मुझे कैसा भव मिलेगा ? मनुष्य भव गया, पश्चात् मनुष्यभव कब मिलेगा ? और मिले तो भी अनन्त बार मिल गया है। आहाहा!

भव, संसार के भव की भीति अर्थात् भय, उससे डरकर भज। आहाहा! दुःख से डरकर... यह तो नरक का, तिर्यच का दुःख, ऐसा नहीं। दुःख से डरकर भज, ऐसा नहीं। संसार पूरा परिभ्रमण का, चारों गतियाँ दुःखरूप हैं। आहाहा! चारों गति के। पूरा संसार लिया है न ? यह कहाँ नरक और तिर्यच का दुःख ही इतना है। स्वर्ग में भी राग का दुःख है। अकेली आकुलता है। आहाहा!

प्रबल संसार की भीति से... वापस ऐसा कहते हैं। उग्र संसार का डर ला। आहाहा! निर्मल स्वभावनियत सुख... कब मिले ? कि प्रबल संसार के डर से... तुझे संसार का डर लगे... आहाहा! अरे! मैं आत्मा हूँ तो सही। यह देह तो अमुक काल रहेगी, पश्चात् कहाँ जाऊँगा ? चौरासी के अवतार सब पड़े हैं। कहीं पता नहीं मिलेगा। ऐसे संसार के परिभ्रमण के दुःख से डरकर। स्वर्ग का सुख है, वह दुःख है। संसार शब्द से यहाँ कोई नरक और तिर्यच अकेली (दोनों गतियाँ) नहीं; चारों ही गतियाँ (उनकी बात है)। आहाहा! यह सेठाई है या बड़ा राजा है, इसलिए सुखी है, (ऐसा नहीं है)। बेचारे सब दुःखी हैं और फिर मरकर वापस कहीं ढोर में जानेवाले हैं। आहाहा! भाषा कैसी! ऐसे वश हुआ है न तू ? उनके कारण नहीं, तेरे कारण।

अब तेरा परवश के कारण अप्राप्त है तो ऐसे निर्मल स्वभाव नियत में रहा हुआ सुख, इस प्रबल संसार की भीति से डरकर... सुख को भज न। संसार के भव के डर से... आत्मा आनन्दस्वरूप है, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है, उसे भज न! आहाहा! ऐसा उपदेश है। आहाहा! संक्षिप्त श्लोक। प्रबल संसार की भीति से... प्रबल संसार का भय। अकेला साधारण नहीं। आहाहा! कहाँ जाऊँगा? किस जगह पडूँगा? निगोद में गया तो अनन्त काल में वापस त्रस होना मुश्किल पड़ेगा। आहाहा!

प्रबल संसार के... डर से, भय से। भय से डरकर भज। भय से डरकर भज। वह किसे भज? आत्मा आनन्द को ( भज )। आत्मा में रहा हुआ आनन्द है। अतीन्द्रिय आनन्द का सागर भगवान है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द नियत निश्चय भरा हुआ है। नित्य है, ध्रुव है, कायम है, एकरूप है। आहाहा! उसे भज। प्रबल संसार के भय से डरकर भज। यदि इसमें से हटा तो कहाँ जाएगा? कहाँ होगा? आहाहा! एक बार तो ढीला कर दे, ऐसा है। ....भाई! यह लड़के ऐसे हुए हैं, पैसा ऐसा पैदा हुआ, अमुक... अपन बढ़े। पहले साधारण थे और माँ-बाप के पास थोड़ा था। अपन बढ़ गये। कहाँ बढ़े? किसमें बढ़े? आहाहा!

प्रबल संसार के... भय से डर। कहाँ जाऊँगा? कहाँ होगा? इससे डरकर आत्मा में है ही। नियत है। आत्मा में आनन्द भरा है। वह तो अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु है। आहाहा! वह इन्द्रियों से ज्ञात हो, ऐसा नहीं है; मन से भी ज्ञात हो, ऐसा नहीं है; राग से भी ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसे अतीन्द्रिय नियत, निश्चय आत्मा में रहा हुआ, उसे प्रबल संसार की भीति से डरकर भज। आहाहा! ११७ हुआ। ११७वाँ कलश हुआ न?

## गाथा-८८

चत्ता अगुप्तिभावं तिगुप्तिगुप्तो हवेइ जो साहू ।  
 सो पडिकमणं उच्चइ पडिकमणमओ हवे जम्हा ॥८८॥  
 त्यक्त्वा ह्यगुप्तिभावं त्रिगुप्तिगुप्तो भवेद्यः साधुः ।  
 स प्रतिक्रमणमुच्यते प्रतिक्रमणमयो भवेद्यस्मात् ॥८८॥

त्रिगुप्तिगुप्तलक्षणपरमतपोधनस्य निश्चयचारित्राख्यानमेतत् । यः परमतपश्चरण सरः-  
 सरसिरुहाकरचण्डचण्डरश्मिरत्यासन्नभव्यो मुनीश्वरः बाह्यप्रपञ्चरूपं अगुप्तिभावं त्यक्त्वा  
 त्रिगुप्तिगुप्तनिर्विकल्पपरमसमाधिलक्षणलक्षितं अत्यपूर्वमात्मानं ध्यायति, यस्मात् प्रतिक्रमणमयः  
 परमसंयमी अत एव स च निश्चयप्रतिक्रमणस्वरूपो भवतीति ।

जो साधु छोड़ अगुप्ति को त्रय-गुप्ति में विचरण करे ।  
 प्रतिक्रमणमयता हेतु से प्रतिक्रमण कहते हैं उसे ॥८८॥

अन्वयार्थः—[ यः साधुः ] जो साधु [ अगुप्तिभावं हि ] अगुप्तिभाव [ त्यक्त्वा ]  
 छोड़कर, [ त्रिगुप्तिगुप्तः भवेत् ] त्रिगुप्तिगुप्त रहता है, [ सः ] वह [ साधु ] [ प्रतिक्रमणम् ]  
 प्रतिक्रमण [ उच्यते ] कहलाता है, [ यस्मात् ] कारण कि वह [ प्रतिक्रमणमयः भवेत् ]  
 प्रतिक्रमणमय है ।

टीका :—त्रिगुप्तिगुप्तपना ( -तीन गुप्ति द्वारा गुप्तपना ) जिसका लक्षण है, ऐसे  
 परम तपोधन को निश्चयचारित्र होने का यह कथन है ।

परम तपश्चरणरूपी सरोवर के कमलसमूह के लिए प्रचण्ड सूर्य समान ऐसे  
 जो अति-आसन्नभव्य मुनीश्वर बाह्य प्रपञ्चरूप अगुप्तिभाव छोड़कर, त्रिगुप्तिगुप्त-  
 निर्विकल्प परमसमाधिलक्षण से लक्षित अति-अपूर्व आत्मा को ध्याते हैं, वे मुनीश्वर  
 प्रतिक्रमणमय परमसंयमी होने से ही निश्चयप्रतिक्रमणस्वरूप हैं ।

## गाथा-८८ पर प्रवचन

अब, ८८ वीं गाथा। ८८ गाथा।

चत्ता अगुत्तिभावं तिगुत्तिगुत्तो हवेइ जो साहू।  
सो पडिकमणं उच्चइ पडिकमणमओ हवे जम्हा ॥८८॥

जो साधु छोड़ अगुत्ति को त्रय-गुत्ति में विचरण करे।  
प्रतिक्रमणमयता हेतु से प्रतिक्रमण कहते हैं उसे ॥८८॥

आहाहा! निमित्त को तो कहीं उड़ा दिया, परन्तु अन्दर का निमित्त व्यवहारप्रतिक्रमण आदि, उसे भी उड़ा दिया। आहाहा! इस निमित्त से यहाँ होता है और इस निमित्त से यहाँ होता है। अरे रे! प्रभु! आहाहा! उस समय की पर्याय तुझसे होती है, वहाँ दूसरा निमित्त तुझे क्या करे? स्पर्श नहीं करता। जिसे स्पर्श नहीं करता। तू स्पर्श नहीं करता, वह स्पर्श नहीं करता। आहाहा! ऐसा स्वरूप है।

जो साधु छोड़ अगुत्ति को त्रय-गुत्ति में विचरण करे।  
प्रतिक्रमणमयता हेतु से प्रतिक्रमण कहते हैं उसे ॥८८॥

टीका : त्रिगुत्तिगुत्तपना ( -तीन गुत्ति द्वारा गुत्तपना )... अब क्या कहते हैं? मन, वचन और काया जो परसन्मुख झुकती है, वह अगुत्ति है। उसे अब गुत्त-छोड़ दे। आहाहा! भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रतिक्रमण की व्याख्या ( की है )। क्योंकि भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रतिक्रमण के दोष हैं या नहीं? दोष भी भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं न? उन भिन्न-भिन्न प्रकार के दोषों से विमुख होना, अन्दर में स्थिरता के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की बात करते हैं। आहाहा! त्रिगुत्तिगुत्तपना ( -तीन गुत्ति द्वारा गुत्तपना ) जिसका लक्षण है, ऐसे परम तपोधन को... आहाहा! जो मन, वचन और काया के लक्ष्य से छूट गया है। आहाहा! मन, वचन, काया की प्रवृत्ति की ओर के झुकाव से छूट गया है। मन, वचन, काया तो जड़ है, परन्तु उसकी ओर के झुकाववाली जो अगुत्ति, उससे गुत्ति में छूटा है। आहाहा! यह प्रतिक्रमण कहते हैं, यह सच्ची सामायिक कहते हैं। आहाहा!

त्रिगुत्तिगुत्तपना ( -तीन गुत्ति द्वारा गुत्तपना )... मन, वचन और काया, जो यह तीन हैं, उनकी ओर के झुकाव का भाव, वह अगुत्ति है। उसे छोड़कर गुत्त हो, अन्दर में जा।

आहाहा! यह प्रतिक्रमण है। आहाहा! ऐसा तो सुना भी नहीं होगा। सुना होवे तो दरकार नहीं की। अनन्त काल से। ओहो! भव के भय का डर। ऐसे परम तपोधन को... मुनि की बात मुख्य ली है न? मन, वचन और काया ये तीन तो जड़ हैं। इनकी ओर के झुकाव का भाव, वह अगुप्ति भाव है। उस अगुप्ति भाव को छोड़कर अन्दर में गुप्त हो। आहाहा! मन, वचन, काया जड़ है, उन्हें छोड़ना नहीं। त्रिगुप्तिगुप्तपना ( -तीन गुप्ति द्वारा गुप्तपना )... ऐसा कहा न? मन, वचन और काया जड़ से गुप्त हो, ऐसा नहीं। वे तो जड़ हैं। मन, वाणी, उनकी ओर का जो झुकाव है, वह अगुप्ति भाव है, उसे छोड़कर गुप्त हो। ऐसी बातें।

जिसका लक्षण है, ऐसे परम तपोधन... महामुनि, उन्हें निश्चयचारित्र होने का... उन्हें सच्चा चारित्र होने का यह कथन है। सच्चा प्रतिक्रमण कहो या सच्चा चारित्र कहो (या) निश्चयचारित्र (कहो)। व्यवहार पंच महाव्रत, वह नहीं। पंच महाव्रत के विकल्प, वह सब मन-वचन-काया की ओर के झुकाववाली बात है। व्यवहार पाँच समिति, गुप्ति आदि। उनसे छूटकर अन्दर में जा। ऐसे परम तपोधन को निश्चयचारित्र होने का यह कथन है। विशेष कहेंगे.....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)